नईदुनिया

संपादकीय

सुरक्षा कवच या जवाबदेही सजा में बाधा, जिम्मेदार कौन

किसी भी लोकतंत्र की मजबूती इस बात से तय होती है कि उसकी व्यवस्था कितनी निष्पक्ष और पारदर्शी है। हाल ही में सामने आए एक घटनाक्रम ने अभियोजन स्वीकृति की पूरी प्रक्रिया पर बड़ा प्रश्नचिह्न लगा दिया है। यह प्रश्न किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं, बल्कि उस व्यवस्था पर है, जो तय करती है कि किसी जनप्रतिनिधि पर केस चलेगा या नहीं। इस मामले में सरकार ने अभियोजन स्वीकृति देने से इनकार किया और संवैधानिक प्रक्रिया के तहत उस पर सहमति भी बन गई। इससे यह बहस तेज हुई है कि क्या यह व्यवस्था न्याय में देरी या न्याय से इनकार का कारण बन रही है।

भारतीय कानून में प्रावधान है कि किसी लोक सेवक या मंत्री पर उसके पद से जुड़े मामले में केस चलाने से पहले सरकार से अनुमति लेनी होती है। इसका उद्देश्य यह था कि कोई व्यक्ति द्वेष या राजनीति के कारण किसी ईमानदार अधिकारी या जनप्रतिनिधि को झूठे मामले में न फंसा सके। यह सुरक्षा कवच प्रशासन को निर्भय होकर काम करने के लिए दिया गया था। लेकिन समय के साथ यही व्यवस्था कई बार सवालों के घेरे में आ जाती है, जब यह जवाबदेही से बचने का माध्यम प्रतीत होने लगती है। ऑपरेशन सिंदूर से जुड़े एक बयान को लेकर देशभर में चर्चा हुई थी। मामला अदालत तक पहुंचा। हाईकोर्ट ने संज्ञान लिया और जांच के आदेश दिए। जांच एजेंसी ने रिपोर्ट भी सौंपी, लेकिन जब अभियोजन स्वीकृति का सवाल आया तो सरकार ने इससे इनकार कर दिया और संवैधानिक प्रक्रिया के तहत उस निर्णय पर अंतिम मुहर भी लग गई। अब यह मामला सुप्रीम कोर्ट में है। यहां किसी व्यक्ति विशेष पर टिप्पणी करना उद्देश्य नहीं है। सवाल यह है कि जब एक तरफ अदालत जांच के आदेश देती है और दूसरी तरफ सरकार स्वीकृति से इनकार कर देती है, तब आम नागरिक के मन में क्या संदेश जाता है। ऐसे मामलों में अक्सर तीन तर्क दिए जाते हैं – माफी मांग ली गई है, यह मानवीय भूल थी और उद्देश्य अपमान करना नहीं था। ये तर्क मानवीय दृष्टिकोण से उचित लग सकते हैं, लेकिन व्यवस्थागत दृष्टिकोण से सवाल उठता है कि क्या किसी संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति के लिए मानवीय भूल का दायरा अलग होना चाहिए। क्या माफी मांग लेने से कानूनी प्रक्रिया समाप्त हो जानी चाहिए? यदि माफी ही अंतिम समाधान है, तो फिर जांच और न्यायिक प्रक्रिया का महत्व क्या रह जाता है? हमारी व्यवस्था में राज्यपाल का पद संवैधानिक संतुलन का प्रतीक माना जाता है। लेकिन जब सरकार अभियोजन स्वीकृति से इनकार करती है और उस पर सहमति भी मिल जाती है, तो आम जनता को यह प्रक्रिया एकतरफा लग सकती है। सवाल किसी पद पर नहीं, बल्कि उस व्यवस्था पर है जिसमें सरकार स्वयं ही निर्णय प्रक्रिया का प्रमुख पक्ष बन जाती है। क्या अभियोजन स्वीकृति का निर्णय किसी स्वतंत्र निकाय के माध्यम से नहीं होना चाहिए? क्या स्वीकृति देने या न देने के कारण सार्वजनिक नहीं किए जाने चाहिए? प्रदेश में इन दिनों जन विश्वास अभियान चल रहा है। अधिकारियों के भ्रमण, निरीक्षण, जनसंवाद और शिकायतों के निराकरण की जानकारी सार्वजनिक की जा रही है। यह सुशासन की दिशा में सकारात्मक कदम है। लेकिन सुशासन की असली परीक्षा तब होती है, जब व्यवस्था खुद को भी उसी कसौटी पर परखे, जिस पर वह जनता और अधिकारियों को परखती है। यदि छोटे स्तर की लापरवाही पर कार्रवाई होती है और बड़े पदों के मामलों में अलग दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो जनता के मन में दोहरे मापदंड की भावना पैदा होती है। अभियोजन स्वीकृति का कानून ईमानदार लोक सेवकों की सुरक्षा के लिए बना था। उसे सुरक्षा कवच ही बने रहना चाहिए, जवाबदेही से बचने का माध्यम नहीं। जनता का भरोसा तभी मजबूत होगा, जब न्याय की प्रक्रिया समान और पारदर्शी दिखाई देगी।

आजकल

सुप्रीम कोर्ट के आदेश- राहत की तलाश

राजधानी भोपाल में रिहायशी क्षेत्रों में कमर्शियल गतिविधियों और तालाब के फुल टैंक लेवल में हुए निर्माण पर चल रही कार्रवाई किसी स्थानीय शिकायत या निगम की अपनी पहल पर नहीं, बल्कि सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर हो रही है। यही तथ्य इस पूरे मामले को सामान्य अतिक्रमण विरोधी अभियान से अलग करता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश का पालन प्रशासन की बाध्यता है। निगम ने इसी के तहत 107 संपत्तियों को कार्रवाई के दायरे में लिया है और हाईकोर्ट के स्टे को खारिज कराने की प्रक्रिया शुरू की है। इसी कार्रवाई के समानांतर मध्यप्रदेश नगरीय प्रशासन के अधिकारियों ने दिल्ली में सरकार और विभाग का पक्ष रखने की कोशिशें तेज कर दी हैं। बताया जा रहा है कि सॉलिसिटर जनरल से मुलाकात की गई है और सुप्रीम कोर्ट में सरकार का पक्ष मजबूती से रखने के लिए दस्तावेज तैयार किए जा रहे हैं। सवाल है कि जब कार्रवाई सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर ही हो रही है तो राहत की कोशिश क्यों हो रही है?

दरअसल, प्रशासन के सामने दो दबाव हैं। पहला न्यायालय के आदेश का पालन करना और दूसरा व्यापारियों तथा आम लोगों के हितों को साधना। रिहायशी क्षेत्रों में वर्षों से चल रही दुकानों को एक साथ बंद करने से रोजगार और अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है। वहीं तालाब के 50 मीटर दायरे में बने 13 निर्माणों को हटाना पर्यावरणीय दृष्टि से जरूरी है, लेकिन वहां रहने वाले लोगों के पुनर्वास का सवाल भी महत्वपूर्ण है। इसलिए दिल्ली में मांगी जा रही राहत कार्रवाई रोकने के बजाय उसे मानवीय और व्यावहारिक बनाने से जुड़ी होनी चाहिए। यह पूरा घटनाक्रम शहरी नियोजन की पुरानी खामियों को भी उजागर करता है। यदि गतिविधियां नियम विरुद्ध थीं तो वर्षों तक उन्हें चलने कैसे दिया गया? निर्माण प्रतिबंधित था तो नक्शे कैसे पास हुए और निगरानी तंत्र कहां था? समाधान केवल सख्ती या राहत में नहीं, बल्कि संतुलन में है। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश का सम्मान करते हुए नियमों का पालन जरूरी है, साथ ही प्रभावित लोगों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था भी होनी चाहिए। दिल्ली में रखा जाने वाला पक्ष केवल तत्काल राहत तक सीमित न रहकर भविष्य की स्पष्ट शहरी नीति पर भी केंद्रित होना चाहिए।

चिप की आत्मनिर्भरता से खुलेगा रोजगार और तकनीक का नया द्वार

सिर्फ मोबाइल नहीं, अब चिप का भी हब बनेगा भारत

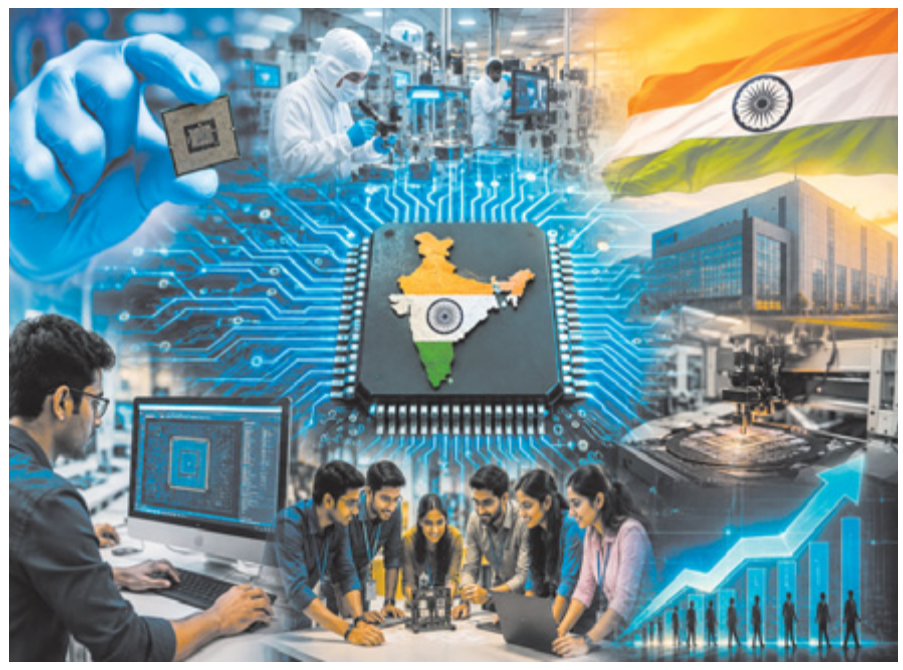

पिछले चार वर्षों में 85 हजार इंजीनियरों को इस सेक्टर के लिए प्रशिक्षित किया जा चुका है और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। सरकार का अनुमान है कि 2032 तक दुनिया में सेमीकंडक्टर निर्माण के लिए 10 लाख इंजीनियरों की जरूरत होगी और इसका बड़ा सप्लायर भारत ही होगा। यानी दुनिया की चिप भारत के इंजीनियर बनाएंगे। यह युवाओं के लिए सुनहरा मौका है, जो तकनीक की दुनिया में अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

एक समय था जब भारत को तकनीक के मामले में केवल एक बड़ा बाजार समझा जाता था। दुनिया के देश भारत में अपना सामान बेचते थे और हम खरीदते थे। चाहे वह मोबाइल फोन हो या लैपटॉप, उसकी सबसे महत्वपूर्ण चीज यानी चिप हमेशा बाहर से आती थी। लेकिन अब तस्वीर बदल रही है। सरकार ने सेमीकॉन 2.0 योजना की अधिसूचना जारी की है और इसके लिए 1 लाख 27 हजार करोड़ रुपये का बजट तय किया है। यह केवल एक सरकारी योजना नहीं, बल्कि भारत के तकनीकी भविष्य की नई इबारत है।

सोचिए, अगर चिप भारत में बनने लगे तो क्या होगा? हमारे युवाओं को रोजगार मिलेगा, हमारा पैसा देश में रहेगा और दुनिया की बड़ी कंपनियां भारत की तरफ देखेंगी। यही सपना अब हकीकत बनने जा रहा है। सरकार का कहना है कि एक से दो वर्ष में ही दुनिया की 10 प्रतिशत चिप का निर्माण भारत में होने लगेगा। यह अपने आप में बहुत बड़ा लक्ष्य है।

76 हजार करोड़ से शुरू हुआ सफर अब 1 लाख 27 हजार करोड़ तक पहुंचा : इस सफर की शुरुआत सेमीकॉन 1.0 से हुई थी। वर्ष 2022 में सरकार ने 76 हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया था, ताकि कंपनियां भारत में निर्माण कार्य शुरू कर सकें और इसका असर दिखा भी है। अब तक देश में तीन कंपनियां विभिन्न प्रकार की चिप का निर्माण शुरू कर चुकी हैं। यह सिर्फ शुरुआत थी। अब सेमीकॉन 2.0 के तहत इस इकोसिस्टम को और बड़ा किया जा रहा है।

केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री अश्विनी वैष्णव ने नई दिल्ली में जानकारी देते हुए कहा कि यह योजना छह साल तक चलेगी और इसके तहत 12 कंपनियों ने भारत में निवेश के लिए अपनी दिलचस्पी दिखाई है। यह बताता है कि दुनिया का भरोसा भारत पर बढ़ा है। कंपनियां समझ रही हैं कि भारत ही आने वाले समय का सबसे बड़ा सेमीकंडक्टर हब बन सकता है।

हर साल 50 से 60 हजार रोजगार और 10 लाख इंजीनियरों की वैश्विक जरूरत

इस योजना का सबसे बड़ा लाभ रोजगार के रूप में मिलने वाला है। अनुमान है कि हर साल 50 से 60 हजार प्रत्यक्ष रोजगार इस सेक्टर में निकलेंगे और अप्रत्यक्ष रोजगार तो लाखों में होंगे। चिप निर्माण एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें हाई स्किल की जरूरत होती है। इसके लिए इंजीनियरों की बड़ी फौज चाहिए।

पिछले चार वर्षों में 85 हजार इंजीनियरों को इस सेक्टर के लिए प्रशिक्षित किया जा चुका है और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। सरकार का अनुमान है कि 2032 तक दुनिया में सेमीकंडक्टर निर्माण के लिए 10 लाख इंजीनियरों की जरूरत होगी और इसका बड़ा सप्लायर भारत ही होगा। यानी दुनिया की चिप भारत के इंजीनियर बनाएंगे। यह युवाओं के लिए सुनहरा मौका है, जो तकनीक की दुनिया में अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

केवल चिप नहीं, पूरा इकोसिस्टम बनेगा देश में

अक्सर लोग समझते हैं कि सेमीकंडक्टर का मतलब केवल चिप बनाना है, लेकिन हकीकत इससे बड़ी है। सेमीकॉन 2.0 के तहत छह सेक्टर में मदद दी जाएगी। इसमें डिजाइन, मशीन, मैटेरियल, फैब सेटिंग, असेंबलिंग, टेस्टिंग और पैकेजिंग जैसे क्षेत्र शामिल हैं। मतलब चिप की सोच से लेकर उसके बनने और पैक होने तक का पूरा काम भारत में ही होगा।

इलेक्ट्रॉनिक्स व आईटी मंत्रालय के मुताबिक, यह रणनीति भारत को किसी एक हिस्से पर निर्भर नहीं रहने देगी। अभी भारत मॉड्यूल बनाता है, लेकिन सेल और वेफर चीन से मंगाता है। चिप के मामले में हम यह गलती नहीं दोहराना चाहते। हम चाहते हैं कि पॉलीसिलिकॉन से लेकर तैयार चिप तक सब कुछ भारत में बने।

ताइवान और चीन पर निर्भरता का अंत

आज दुनिया की लगभग 70 प्रतिशत चिप ताइवान, दक्षिण कोरिया और चीन में बनती है। कोरोना काल में जब चिप की सप्लाई रुकी तो पूरी दुनिया में गाड़ियों का प्रोडक्शन तक रुक गया था। भारत ने इस खतरे को करीब से देखा है और वह समझ गया है कि अगर हमें आत्मनिर्भर बनना है तो चिप के मामले में भी आत्मनिर्भर बनना होगा। सेमीकॉन 2.0 इसी आत्मनिर्भरता की दिशा में बड़ा कदम है।

जब चिप भारत में बनेगी तो न केवल हमारी सुरक्षा मजबूत होगी, बल्कि हमारे इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद भी सस्ते होंगे और हम दुनिया को चिप निर्यात भी कर सकेंगे।

स्टार्टअप के लिए नया आसमान

इस योजना में स्टार्टअप के लिए भी बड़ा मौका है। चिप डिजाइन एक ऐसा क्षेत्र है, जहां छोटे स्टार्टअप भी बड़ा काम कर सकते हैं। सरकार डिजाइन सेक्टर में भी मदद दे रही है। इससे देश में प्रतिस्पर्धी चिप डिजाइन इकोसिस्टम तैयार होगा और आत्मनिर्भर भारत का सपना पूरा होगा।

यह वह समय है, जब भारत केवल चिप का उपभोक्ता नहीं, बल्कि निर्माता बनकर उभरेगा। सेमीकॉन 2.0 केवल 1 लाख 27 हजार करोड़ रुपये की योजना नहीं, बल्कि आने वाले 20 से 30 सालों की तकनीकी स्वतंत्रता की दिशा में बड़ा कदम है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

मांग से ज्यादा उत्पादन का जाल और सोलर उद्योग पर मंडराता मंदी का साया

भारत चीन की राह पर तो नहीं चल रहा

भारत ने पिछले कुछ वर्षों में सौर ऊर्जा के क्षेत्र में जो छलांग लगाई है, वह दुनिया के लिए एक मिसाल है। कभी हम सोलर पैनल के लिए पूरी तरह से आयात पर निर्भर थे। आज हम चीन के बाद दुनिया के दूसरे सबसे बड़े सोलर मॉड्यूल निर्माता बन गए हैं। यह उपलब्धि अपने आप में गर्व की बात है, लेकिन हर चमकदार सिक्के का एक दूसरा पहलू भी होता है और आज वही दूसरा पहलू सामने आ रहा है। देश में जितने सोलर मॉड्यूल बन रहे हैं, उतनी उनकी खपत नहीं हो रही है। उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो रहा है और खपत कम है। यही वह स्थिति है, जिसने कभी चीन के सोलर उद्योग को भी गहरे संकट में डाल दिया था और आज वही खतरा भारत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है।

आईईईएफए यानी इंस्टीट्यूट फॉर एनर्जी इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंशियल एनालिसिस और जेएमके रिसर्च की ताजा रिपोर्ट ने इस खतरे की घंटी को बहुत साफ शब्दों में बजाया है। रिपोर्ट के अनुसार, जून 2026 तक भारत की सोलर मॉड्यूल बनाने की क्षमता 233 गीगावाट तक पहुंच गई है। यह आंकड़ा हमारी घरेलू मांग से कई गुना ज्यादा है। इसका सीधा असर यह हुआ है कि फैक्ट्रियां अपनी पूरी क्षमता से चल ही नहीं पा रही हैं। आज देश की अधिकतर फैक्ट्रियां केवल 35 से 40 प्रतिशत क्षमता पर काम कर रही हैं, जबकि किसी भी फैक्ट्री को मुनाफे में बने रहने के लिए कम से कम 50 से 65 प्रतिशत क्षमता पर चलना जरूरी होता है। सोचिए, एक कारखाना बना दिया, मजदूर रख लिए गए, बिजली का बिल आ रहा है, लेकिन माल आधा ही बन रहा है तो घाटा तो होगा ही। यही घाटा धीरे-धीरे मंदी में बदल रहा है।

चिंता की बात यह है कि यह संकट यहीं नहीं रुकने वाला है। बाजार में पहले से ही 135 गीगावाट की अतिरिक्त क्षमता निर्माण के अधीन है या योजना में है। मतलब, जो गोदाम पहले से भरे हुए हैं, उनमें और माल आने वाला है। अगर मांग नहीं बढ़ी तो केवल मॉड्यूल बनाने वाले छोटे निर्माताओं के कारखाने ठप पड़ जाएंगे और उनकी संपत्तियां बेकार हो जाएंगी। यह स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी कुछ साल पहले चीन में हुई थी। चीन ने इतने सोलर पैनल बना दिए कि उसे उन्हें घाटे में बेचना पड़ा और उसकी सैकड़ों छोटी कंपनियां बंद हो गईं। भारत भी अनजाने में उसी रास्ते पर चल पड़ा है। इस संकट को और गहरा कर दिया है अमेरिका के फैसले ने। वित्तीय वर्ष 2026 में भारत के कुल सोलर मॉड्यूल निर्यात का लगभग 97 प्रतिशत हिस्सा अकेले अमेरिका को जाता था, लेकिन अमेरिका ने भारतीय सोलर उत्पादों पर 200 प्रतिशत से अधिक का आयात शुल्क लगा दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि 2024 के उच्चतम स्तर के मुकाबले अमेरिका को होने वाला निर्यात 44 से 47 प्रतिशत तक गिर गया है। भारतीय कंपनियों ने अपना सारा दांव अमेरिका पर लगा दिया था। अब वहां दरवाजा बंद होने से उनके पास माल पड़ा रह गया है। अब उम्मीद यूरोपीय संघ से है, लेकिन यूरोप में भी चीन पहले से ही बहुत कम कीमत पर माल बेच रहा है। वहां प्रतिस्पर्धा बहुत कड़ी है। इसलिए निर्यात के भरोसे इस अतिरिक्त उत्पादन को खपाना आसान नहीं होगा। इस पूरे संकट की जड़ में एक और बड़ी नीतिगत चूक है, जिसे रिपोर्ट में बहुत विस्तार से बताया गया है। भारत ने केवल मॉड्यूल बनाने पर जोर दिया है, लेकिन मॉड्यूल के लिए जरूरी कच्चे माल पर ध्यान नहीं दिया। हमारी मॉड्यूल बनाने की क्षमता सोलर सेल बनाने की क्षमता से सात गुना ज्यादा है और इंगॉट-वेफर बनाने की क्षमता से 116 गुना ज्यादा है। इसका मतलब है कि हम सोलर पैनल की अंतिम असेंबली तो भारत में कर रहे हैं, लेकिन उसके लिए जरूरी सेल, वेफर और पॉलीसिलिकॉन आज भी चीन से आयात कर रहे हैं। यह ऐसा ही है, जैसे हम कार का कारखाना तो लगा लें, लेकिन इंजन और चेसिस चीन से मंगवाएं। चीन जब चाहे कच्चे माल की कीमत बढ़ा देता है और भारतीय कंपनियां कुछ नहीं कर पातीं। जब तक हम पूरी सप्लाई चेन यानी पॉलीसिलिकॉन से लेकर वेफर और सेल तक आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक हम सही मायने में आत्मनिर्भर नहीं कहला सकते और घाटे का यह खेल चलता रहेगा।

रिपोर्ट में यह भी अनुमान लगाया गया है कि डेटा सेंटर, ग्रीन हाइड्रोजन, ग्रीन अमोनिया और निर्यात के जरिए 2030 तक 17 से 22 गीगावाट की अतिरिक्त मांग पैदा हो सकती है। लेकिन यह मांग भी 135 गीगावाट की आने वाली अतिरिक्त क्षमता के सामने बहुत छोटी है। सवाल यह है कि बाकी की 100 गीगावाट से अधिक क्षमता का क्या होगा? क्या वह ऐसे ही खाली पड़ी रहेगी या उसे घाटे में बेचना पड़ेगा?

भारत में सौर ऊर्जा की मांग बढ़ाने के लिए अभी भी कई अड़चनें हैं। बिजली वितरण कंपनियां सौर ऊर्जा खरीदने में आनाकानी करती हैं, रूफटॉप सोलर की गति बहुत धीमी है और जमीन अधिग्रहण की प्रक्रिया बहुत जटिल है। जब तक इन समस्याओं को हल नहीं किया जाएगा, तब तक मांग उत्पादन के बराबर नहीं आ पाएगी। इस मंदी से कैसे बचा जाए, इस पर रिपोर्ट में विशेषज्ञों ने कुछ बहुत ही व्यावहारिक सुझाव दिए हैं। पहला सुझाव है कि सरकार को केवल मॉड्यूल बनाने के लिए प्रोत्साहन देने के बजाय पॉलीसिलिकॉन, वेफर और सेल बनाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि चीन पर निर्भरता खत्म हो सके। दूसरा सुझाव है कि भारत को पैक्स सिलिकॉन गठबंधन जैसे अंतरराष्ट्रीय समूहों में शामिल होकर कच्चे माल के स्रोतों का विविधीकरण करना चाहिए। महत्वपूर्ण सुझाव है कि सरकार को नई मॉड्यूल फैक्ट्रियों को मंजूरी देने पर कुछ समय के लिए रोक लगानी चाहिए और मौजूदा कंपनियों को अपस्ट्रीम में जाने के लिए मदद करनी चाहिए। साथ ही घरेलू मांग बढ़ाने के लिए सभी सरकारी इमारतों पर रूफटॉप सोलर अनिवार्य किया जाना चाहिए और डिस्कॉम पर सौर ऊर्जा खरीदने के लिए सख्त नियम लागू होने चाहिए। सोलर उद्योग भारत के हरित भविष्य की रीढ़ है, लेकिन रीढ़ को भी संतुलित भोजन की जरूरत होती है। केवल एक ही हिस्से को बढ़ाते जाना और बाकी शरीर को कमजोर छोड़ देना समझदारी नहीं है। आज भारत के सोलर उद्योग को उसी संतुलन की जरूरत है। हमें संख्या नहीं, गुणवत्ता और पूरी सप्लाई चेन पर ध्यान देना होगा। अगर हमने चीन की गलती से सबक नहीं लिया तो वह दिन दूर नहीं, जब देश के कई सोलर पार्क में ताले लटके होंगे, हजारों युवाओं का रोजगार खतरे में होगा और बैंकों का हजारों करोड़ रुपये का कर्ज डूब जाएगा। आवश्यकता से अधिक उत्पादन कभी भी तरक्की का संकेत नहीं होता, बल्कि यह आने वाली मंदी का पहला संकेत होता है और भारत के सोलर उद्योग में यह घंटी बज चुकी है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

नापतौल नहीं, तोल-मोल विभाग

अफसर टेलीपोर्ट होते हैं और नियम तौल में कम निकलते हैं

विभाग में कहावत चलती है कि इंस्पेक्टर बनो तो कमाई है, सहायक नियंत्रक बनो तो सिर्फ फाइलें हैं। तो हमारे चतुर अफसरों ने इसका भी जुगाड़ निकाल लिया। प्रमोशन लेकर सहायक नियंत्रक, उप नियंत्रक बन गए, क्लास-2 का रुतबा ले लिया, लेकिन इंस्पेक्टर वाली क्लास-3 की कुर्सी नहीं छोड़ी। अब एक ही आदमी दो-दो पदों पर है। सुबह साहब के तौर पर इंस्पेक्टरों की निगरानी करनी है और शाम को खुद ही इंस्पेक्टर बनकर पेट्रोल पंप की नोजल और किराने की दुकान का बाट चेक करने निकल जाना है। मतलब निगरानी करने वाला और निगरानी करवाने वाला दोनों एक ही। खुद ही चोर, खुद ही थानेदार।

मध्य प्रदेश में एक विभाग ऐसा भी है, जिसने विज्ञान को ही फेल कर दिया है। भौतिकी कहती है, एक व्यक्ति एक समय पर एक ही जगह हो सकता है, लेकिन नापतौल विभाग कहता है, हमारा अफसर एक ही दिन में इंदौर में भी है और सागर में भी। ये विभाग तराजू से अनाज नहीं, सरकार को तोल रहा है। 13 संभाग, 13 कार्यालय और उन कार्यालयों में जमे हुए कुछ ऐसे अमर पात्र, जिन्हें देखकर लगता है कि तबादला नाम का शब्द इनकी सर्विस बुक में छपा ही नहीं है। कोई तीन साल से, कोई पांच साल से एक ही मलाईदार कुर्सी पर ऐसा जमा है, जैसे फेविकोल से चिपकाया हो। अंगद का पैर और साहब की कुर्सी – दोनों को हिलाना असंभव।

विभाग में कहावत चलती है कि इंस्पेक्टर बनो तो कमाई है, सहायक नियंत्रक बनो तो सिर्फ फाइलें हैं। तो हमारे चतुर अफसरों ने इसका भी जुगाड़ निकाल लिया। प्रमोशन लेकर सहायक नियंत्रक, उप नियंत्रक बन गए, क्लास-2 का रुतबा ले लिया, लेकिन इंस्पेक्टर वाली क्लास-3 की कुर्सी नहीं छोड़ी।

अब एक ही आदमी दो-दो पदों पर है। सुबह साहब के तौर पर इंस्पेक्टरों की निगरानी करनी है और शाम को खुद ही इंस्पेक्टर बनकर पेट्रोल पंप की नोजल और किराने की दुकान का बाट चेक करने निकल जाना है। मतलब निगरानी करने वाला और निगरानी करवाने वाला दोनों एक ही। खुद ही चोर, खुद ही थानेदार।

इंदौर से सागर 350 किलोमीटर है। आम आदमी के लिए यह सात घंटे का सफर है, लेकिन विभाग के खेमराज चौधरी जैसे अफसरों के लिए यह महज एक हस्ताक्षर की दूरी है। फाइल पर यहां साइन किया और निरीक्षण वहां हो गया। इसे प्रबंधन नहीं, जादू कहते हैं।

ये नापतौल है या वसूली का पेटेंट मॉडल? : जो लोग विभाग को नहीं जानते, उन्हें बता दें कि नापतौल का इंस्पेक्टर ही असली खिलाड़ी है। उसका सीधा संपर्क व्यापारी से, राशन दुकान से, पेट्रोल पंप से, फैक्ट्री से है। जहां सीधा संपर्क, वहां 'ऊपरी संपर्क' के रास्ते भी सबसे चौड़े।

इसीलिए कोई भी प्रमोशन लेकर ऊपर जाना नहीं चाहता। सबको नीचे वाली मलाई ही चाहिए। उप नियंत्रक का काम है 4-5 जिलों के इंस्पेक्टरों पर नजर रखना, लेकिन जब नजर रखने वाला खुद ही वसूली की लाइन में लग जाए तो सिस्टम को कौन नापेगा?

सरकार नियम बनाती है कि एक जगह तीन साल से ज्यादा कोई नहीं रहेगा। विभाग में इस नियम को रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया है। मलाईदार जिले चिन्हित हैं – इंदौर, भोपाल, ग्वालियर, जबलपुर। यहां पोस्टिंग मिल गई तो समझो लॉटरी लग गई। फिर अंगद की तरह पैर जमा लो, कोई माई का लाल हिला नहीं सकता। क्यों हिलेगा? ऊपर तक तोल-मोल सेट है।

एक अफसर, चार-चार चार्ज – विभाग है या लंगर? : एक और अद्भुत आविष्कार सामने आया है। एक अफसर पर चार-चार चार्ज, मतलब एक ही आदमी चार जिलों का भाग्यविधाता। सुबह एक जिले में, दोपहर दूसरे में, शाम तीसरे में। ये इंसान है या सरकारी जीप?

और मजे की बात है, ये सब कागजों पर चल रहा है। कागज पर निरीक्षण हो रहा है, कागज पर ही कांटे सीधे हो रहे हैं और कागज पर ही जनता को न्याय मिल रहा है। जमीन पर तो सिर्फ एक ही चीज सीधी हो रही है – साहब की जेब।

असली खेल तब समझ आता है, जब आप देखते हैं कि ये चार्ज उन जिलों के हैं, जो 350 किलोमीटर दूर हैं। वहां की जनता शिकायत करे भी तो किससे करे? साहब तो कभी आते ही नहीं और फाइल कहती है, साहब तो रोज निरीक्षण पर हैं।

साहब का तराजू – जनता के लिए टेढ़ा, खुद के लिए सीधा : नापतौल विभाग का मूल मंत्र है – जनता को सही तौल मिले, कोई व्यापारी कम न तोले। लेकिन यहां तो विभाग का खुद का तराजू ही गड़बड़ है। एक पलड़े में नियम-कानून, ईमानदारी और दूसरे पलड़े में मलाईदार पोस्टिंग, ऊपरी कमाई और अंगद की तरह जमे रहने की जिद। और हर बार दूसरा पलड़ा भारी निकल रहा है।

जब तक विभाग में ये 'वन मैन डबल पोस्ट' का फॉर्मूला चलेगा, तब तक न नाप सही होगी, न तोल। सरकार को चाहिए कि इन अंगद के पैरों को उखाड़े, 13 संभागों में लॉटरी सिस्टम से पोस्टिंग करे, एक साल से ज्यादा किसी को एक जिले में न रहने दे और सबसे जरूरी, जो अफसर क्लास-2 में प्रमोट हो गया है, उससे क्लास-3 की कुर्सी तुरंत खाली करवाए।

नहीं तो ये विभाग नापतौल कम, तोल-मोल विभाग ज्यादा कहलाएगा, जहां अफसर 350 किलोमीटर दूर बैठकर भी आपकी दुकान का बाट टेढ़ा बता देगा और आप कुछ नहीं कर पाएंगे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)